22. परिणामतः, यह अपील भागतः मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय का तारीख 6 मार्च, 2014 का निर्णय अपास्त किया जाता है और 2007 की दांडिक अपील सं. 254 अभियुक्त के विधिक उत्तराधिकारियों को अवसर देने के पश्चात् नए सिरे से सुनवाई किए जाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरुज्जीवित की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.

[2020] 2 उम. नि. प. 430

वर्दराजन

बनाम

कनकावल्ली और अन्य

[2009 की सिविल अपील सं. 5673]

22 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव और न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 और आदेश XXI का नियम 35 और आदेश XXII का नियम 5 तथा हिन्दू उत्तराधिकार नियम, 1956 की धारा 15] – अपील – पुनरीक्षण अधिकारिता – उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों और डिक्रियों में हस्तक्षेप करना – अधिकारिता का प्रयोग, अधिकारिता के अतिक्रमण, अधिकारिता के परे या तात्विक अनियमितता में करना – अधीनस्थ न्यायालयों के भिन्न-भिन्न मत – उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, किसी भी अधीनस्थ न्यायालय के निर्णयों और डिक्रियों में तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपनी अधिकारिता के परे या अधिकारिता के अतिक्रमण में या तात्विक अनियमितता में कार्य

किया गया हो अन्यथा नहीं, मात्र किसी विषय-वस्तु पर अधीनस्थ न्यायालयों के भिन्न-भिन्न मत व्यक्त करने के आधार पर किसी भी अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय या डिक्री में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

वर्तमान मामले में, उमा देवी ने मनिका नायकर अपने पति की हित-उत्तराधिकारी होने के नाते वाद संपत्ति के संबंध में विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । उमा देवी के पूर्व, उसके पति ने पूर्व में श्रीमती वल्लियामल के साथ विवाह किया था और उससे एक पुत्र मुनुसामी नायकर पैदा हुआ था । मनिका नायकर की मृत्यु वर्ष 1971 में हो गई थी । उमा देवी ने मनिका नायकर के विरुद्ध वाद संपत्ति में आधे हिस्से का दावा करते हुए विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया था । यह वाद, तारीख 7 अप्रैल, 1989 को डिक्री हो गया था और यह डिक्री अंतिम हो गई थी । वर्ष 1999 में ही उमा देवी ने पारित डिक्री के निष्पादन की ईप्सा की थी किन्तु तारीख 22 जुलाई, 1999 को ही उसकी मृत्यु हो गई थी । अपीलार्थी जो उमा देवी की छोटी बहन का पुत्र है, ने तारीख 16 जुलाई, 1999 के विल (प्रदर्श पी-1) के आधार पर उसका विधिक प्रतिनिधि होने के नाते डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन फाइल किया । उक्त आवेदन को निष्पादन न्यायालय द्वारा तारीख 29 मार्च, 2004 को मंजूर कर लिया गया था । अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के नियम 35 के अधीन एक आवेदन प्रत्यर्थी की बेदखली और परिसरों का खाली कब्जा उसे सौंपने के लिए फाइल किया । इस आवेदन के उत्तर में, प्रत्यर्थी ने यह प्राख्यान किया कि विल कूटरचित है और यह कथन किया कि बहन का पुत्र, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15 के अनुसार, विधिक उत्तराधिकारी नहीं हो सकता है । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने आवेदन का विनिश्चय तारीख 29 सितम्बर, 2005 को किया । यह निष्कर्ष निकाला कि विल, अभि. सा. 2 अयप्पा द्वारा अनुप्रमाणित है जिसने इस पर अनुप्रमाणक साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किया था और अभि. सा. 3 मोहन विल का लेखक है । प्रत्यर्थी ने सेंथिलनाथन की प्रत्यर्थी साक्षी-1 के रूप में और कृष्णन की प्रत्यर्थी साक्षी-2 के रूप में परीक्षा की । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया

कि अपीलार्थी मृतक उमा देवी के विधिक प्रतिनिधि के रूप में डिक्री निष्पादन कराने का हकदार है । निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 1982 की मूल वाद सं. 30 में निर्णय और डिक्री तारीख 7 अप्रैल, 1989 को उमा देवी के पक्ष में मंजूर की गई थी । या तो मृतक मुनुसामी या उसके पुत्र उक्त सेंथिलनाथन ने डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की है । किन्तु उक्त उमा देवी ने अपने सम्यक् हस्ताक्षर द्वारा एक निष्पादन आवेदन फाइल किया था । आगे, उक्त उमा देवी ने अपने मृत्यु के पूर्व अर्थात् अपनी मृत्यु के छह दिन पूर्व, एक विल, प्रदर्श पी-1 निष्पादित की थी । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि निष्पादन न्यायालय फाइल करने की उसकी कार्रवाई और विल को प्रत्यर्थियों द्वारा भी सही होना स्वीकार किया गया है । आगे इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि चूंकि उक्त मुनुसामी, जो उसके पति की प्रथम पत्नी का पुत्र है, उसको भोजन, कपड़े और शरण नहीं दिया था, इसलिए, मृतक उमा देवी अपने छोटी बहन के घर चली गई थी और उसके साथ लंबे समय तक रही और चूंकि उसका स्वास्थ्य खराब हो गया था, इसलिए, उसने अपनी छोटी बहन अर्थात् वर्दराजन के पुत्र के पक्ष में एक विल निष्पादित किया था और ये तथ्य सही पाए जाते हैं । उक्त आदेश को निर्णीत ऋणी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि निष्पादन न्यायालय विल की विधिमान्यता के साथ ही विल के अधीन वसीयतदार जो विधिक प्रतिनिधि हो सकता है, की विधिमान्यता को अवधारित करने के लिए सक्षम और समुचित न्यायालय है और डिक्री के निष्पादन की ईप्सा से अभिलेखों का परिशीलन कर सकता है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि बिल का निष्पादन, संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है । यह उल्लिखित किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन निष्पादन न्यायालय द्वारा पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् विल के निष्पादन के संबंध में अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया था । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी के अनुसार डिक्री धारक, उमा देवी को उसके सौतले पुत्र मुनुसामी नायकर द्वारा उसे घर से बाहर निकाल दिया गया था और वह लगभग 20 वर्षों तक अपनी

बहन के पास रहीं थी । किन्तु, विल का निष्पादन, अंतिम समय में होने से संदेहास्पद परिस्थितियां उद्भूत होती हैं । उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जो साक्ष्यों द्वारा सिद्ध की गई हैं, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रतिपादक ने जिस पर आरोप अधिरोपित किए गए हैं, विल के निष्पादन के संबंध में संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर नहीं किया है । आगे निचले न्यायालय ने इस बाबत संतोषजनक कारण नहीं दिया है कि किस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विल साबित कर दिया गया है । संतोषजनक साक्ष्य के अभाव में, हम यह सुनिश्चित करने में असमर्थ हैं कि क्या विल, वसीयतकत्री द्वारा निष्पादित है । इसलिए, जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि विल का निष्पादन ही साबित नहीं हुआ है और यह असली नहीं है, परिणामत: उक्त विल के अधीन वसीयतदार को डिक्री धारक अर्थात् वसीयतकत्री के स्थान में निष्पादन आवेदन कायम रखने के अनुक्रम में अभिलेख पर उसके विधिक प्रतिनिधि के रूप में नहीं लिया जा सकता है । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय का आदेश, विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अपीलार्थी ने उमा देवी द्वारा निष्पादित विल के आधार पर उसका विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया है । उसने अनुप्रमाणक साक्षी और विल के लेखक को प्रस्तुत किया है । साक्षियों ने अपीलार्थी जो उसकी बहन का पुत्र है, के पक्ष में उमा देवी द्वारा विल के निष्पादन का साक्ष्य दिया है । किसी अन्य व्यक्ति ने मृतक डिक्री धारक के विधिक प्रतिनिधि के रूप में डिक्री के निष्पादन की ईप्सा करने के लिए सामने नहीं आया है । यह उमा देवी ही है जिसने निष्पादन आवेदन फाइल किया था किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् अपीलार्थी ने ही निष्पादन को जारी रखने के लिए एक आवेदन फाइल किया है । मृतक डिक्री धारक के विधिक प्रतिनिधि का दावा करने वाले किन्हीं विरोधी दावेदारों के अभाव में, उच्च न्यायालय निष्पादन न्यायालय के आदेश को अपास्त करने में न्यायोचित नहीं था, जबकि संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के निबंधनों में, यह अवधारित करने की अधिकारिता है कि संक्षिप्तत: कौन विधिक

उत्तराधिकारी है । न्यायालय यह कह सकता है कि संहिता, 1908 का आदेश XXII, वाद में लंबित कार्यवाहियों में लागू होता है । किन्तु, विधिक प्रतिनिधियों के विरोधी दावों को संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, निष्पादन कार्यवाहियों में विनिश्चित किया जा सकता है । विधिक प्रतिनिधियों को एकमात्र वाद के प्रयोजन के लिए भी पक्षकार बनाया जा सकता है । पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी, विल के आधार पर मृतक की संपदा में एकमात्र दावेदार है । निष्पादन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी मृतक का विधिक प्रतिनिधि है जो डिक्री का निष्पादन कराने में सक्षम है । उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी विधिक प्रतिनिधि के रूप में, डिक्री का निष्पादन कराने और इसका तार्किक रूप से अंत कराने का हकदार है । डिक्री का निष्पादन कराने में विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार बनाने की कार्यवाहियों की प्रकृति के अतिरिक्त न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि संहिता, 1908 की धारा 115 में अधिकथित परीक्षणों में से किसी भी परीक्षण का उच्च न्यायालय द्वारा समाधान नहीं किया जा सका था जिससे कि निष्पादक न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जा सके । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप किया है यद्यपि, जैसे कि उसने प्रथम न्यायालय के रूप में कार्य किया है । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश में तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है जब वह अपनी ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए करता है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं होता है या इस प्रकार निहित अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहता है या अवैध तौर पर अधिकारिता का प्रयोग करता है या तात्विक अनियमितता बरती गई हो । मात्र यह तथ्य कि उच्च न्यायालय का उन्हीं तथ्यों पर विभिन्न मत था, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की किसी अधिकारिता को प्रदत्त नहीं करता है । परिणामतः, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है और निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को प्रतिस्थापित किया जाता है । (पैरा 7, 8, 9, 14, और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 1 एस. सी. सी. 277 :
दशरथ राव काते बनाम **बृज मोहन श्रीवास्तव** ; 11

[2010] (2010) 2 एस. सी. सी. 162 :
सुरेश कुमार बंसल बनाम **कृष्णा बंसल और एक अन्य** ; 13

[2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 521 :
जलदि सुगुना (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण
बनाम **सत्य साईं केन्द्रीय न्यास और अन्य** ; 12

[1998] (1998) 3 एस. सी. सी. 148 :
वी. उतिरापति बनाम **अशरब और अन्य** ; 8

[1981] ए. आई. आर. 1981 पंजाब और हरियाणा 130 :
मोहिन्दर कौर और एक अन्य बनाम
पियारा सिंह और अन्य ; 10,11

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1049 :
दया राम और अन्य बनाम **श्याम सुंदरी और अन्य** ; 9

आई. एल. आर. 26 मद्रास 230 :
कादिर बनाम **मुत्थुकृष्णा अय्यर** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की सिविल अपील सं. 5673.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री परमाशिवम, ए. एस. वैरावन, राकेश के. शर्मा, हार्दिक गौतम, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री रोहित दत्त, सुभांगी सेनगल, चीरा रंजन एड्डी, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – वर्तमान अपील में चुनौती की विषय-वस्तु, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 का आदेश है ।

2. पुनरीक्षण आवेदन, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित तारीख 19 सितम्बर, 2005 के आदेश के प्रति निर्देशित है जिसमें उमा देवी के पक्ष में पारित डिक्री के अनुसरण में वाद संपत्ति का कब्जा वर्तमान अपीलार्थी को उमा देवी का विधिक प्रतिनिधि होने के नाते दिए जाने का आदेश दिया गया था ।

3. उमा देवी ने मनिका नायकर अपने पति की हित-उत्तराधिकारी होने के नाते वाद संपत्ति के संबंध में विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । उमा देवी के पूर्व, उसके पति ने पूर्व में श्रीमती वल्लियामल के साथ विवाह किया था और उससे एक पुत्र मुनुसामी नायकर पैदा हुआ था । मनिका नायकर की मृत्यु वर्ष 1971 में हो गई थी । उमा देवी ने मनिका नायकर के विरुद्ध वाद संपत्ति में आधे हिस्से का दावा करते हुए विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया था । यह वाद, तारीख 7 अप्रैल, 1989 को डिक्री हो गया था और यह डिक्री अंतिम हो गई थी । वर्ष 1999 में ही उमा देवी ने पारित डिक्री के निष्पादन की ईप्सा की थी किन्तु तारीख 22 जुलाई, 1999 को ही उसकी मृत्यु हो गई थी । अपीलार्थी जो उमा देवी की छोटी बहन का पुत्र है, ने तारीख 16 जुलाई, 1999 के विल (प्रदर्श पी-1) के आधार पर उसका विधिक प्रतिनिधि होने के नाते डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन फाइल किया । उक्त आवेदन को निष्पादन न्यायालय द्वारा तारीख 29 मार्च, 2004 को मंजूर कर लिया गया था ।

4. अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के नियम 35 के अधीन एक आवेदन प्रत्यर्थी की बेदखली और परिसरों का खाली कब्जा उसे सौंपने के लिए फाइल किया । इस आवेदन के उत्तर में, प्रत्यर्थी ने यह प्राख्यान किया कि विल कूटरचित है और यह कथन किया कि बहन का पुत्र, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा

15 के अनुसार, विधिक उत्त्राधिकारी नहीं हो सकता है । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने आवेदन का विनिश्चय तारीख 29 सितम्बर, 2005 को किया । यह निष्कर्ष निकाला कि विल, अभि. सा. 2 अयप्पा द्वारा अनुप्रमाणित है जिसने इस पर अनुप्रमाणक साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किया था और अभि. सा. 3 मोहन विल का लेखक है । प्रत्यर्थी ने सेंथिलनाथन की प्रत्यर्थी साक्षी-1 के रूप में और कृष्णन की प्रत्यर्थी साक्षी-2 के रूप में परीक्षा की । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी मृतक उमा देवी के विधिक प्रतिनिधि के रूप में डिक्री निष्पादन कराने का हकदार है । निष्पादन न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :-

> "11. ..... आगे 1982 की मूल वाद सं. 30 में निर्णय और डिक्री तारीख 7 अप्रैल, 1989 को उमा देवी के पक्ष में मंजूर किया गया था । या तो मृतक मुनुसामी या उसके पुत्र उक्त सेंथिलनाथन ने डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की है । किन्तु उक्त उमा देवी ने अपने सम्यक् हस्ताक्षर द्वारा एक निष्पादन आवेदन फाइल किया था । आगे, उक्त उमा देवी ने अपने मृत्यु के पूर्व अर्थात् अपनी मृत्यु के छह दिन पूर्व, एक विल, प्रदर्श पी-1 निष्पादित की थी । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि निष्पादन न्यायालय फाइल करने की उसकी कार्रवाई और विल को प्रत्यर्थियों द्वारा भी सही होना स्वीकार किया गया है । आगे इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि चूंकि उक्त मुनुसामी, जो उसके पति की प्रथम पत्नी का पुत्र है, उसको भोजन, कपड़े और शरण नहीं दिया था, इसलिए, मृतक उमा देवी अपने छोटी बहन के घर चली गई थी और उसके साथ लंबे समय तक रही और चूंकि उसका स्वास्थ्य खराब हो गया था, इसलिए, उसने अपनी छोटी बहन अर्थात् वर्दराजन के पुत्र के पक्ष में एक विल निष्पादित किया था और ये तथ्य सही पाए जाते हैं ।"

5. उक्त आदेश को निर्णीत ऋणी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से चुनौती

दी गई थी । यह उल्लिखित किया जा सकता है कि अपीलार्थी के अलावा कोई अन्य व्यक्ति उमा देवी के विधिक प्रतिनिधि के रूप में डिक्री के निष्पादन को जारी रखने के लिए सामने नहीं आया था ।

6. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि निष्पादन न्यायालय विल की विधिमान्यता के साथ ही विल के अधीन वसीयतदार जो विधिक प्रतिनिधि हो सकता है, की विधिमान्यता को अवधारित करने के लिए सक्षम और समुचित न्यायालय है और डिक्री के निष्पादन की ईप्सा से अभिलेखों का परिशीलन कर सकता है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि बिल का निष्पादन, संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है । यह उल्लिखित किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन निष्पादन न्यायालय द्वारा पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् विल के निष्पादन के संबंध में अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया था । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी के अनुसार डिक्री धारक, उमा देवी को उसके सौतले पुत्र मुनुसामी नायकर द्वारा उसे घर से बाहर निकाल दिया गया था और वह लगभग 20 वर्षों तक अपने बहन के पास रहीं थी । किन्तु, विल का निष्पादन, अंतिम समय में होने से संदेहास्पद परिस्थितियां उद्भूत होती हैं । उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला है :-

> "19. उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जो साक्ष्यों द्वारा सिद्ध की गई हैं, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रतिपादक ने जिस पर आरोप अधिरोपित किए गए हैं, विल के निष्पादन के संबंध में संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर नहीं किया है । आगे निचले न्यायालय ने इस बाबत संतोषजनक कारण नहीं दिया है कि किस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विल साबित कर दिया गया है । संतोषजनक साक्ष्य के अभाव में, हम यह सुनिश्चित करने में असमर्थ है कि क्या विल, वसीयतकत्री द्वारा निष्पादित है । इसलिए, जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि विल का निष्पादन ही साबित नहीं हुआ है और यह असली नहीं है, परिणामत: उक्त विल के अधीन वसीयतदार को डिक्री धारक

अर्थात् वसीयतकत्री के स्थान में निष्पादन आवेदन कायम रखने के अनुक्रम में अभिलेख पर उसके विधिक प्रतिनिधि के रूप में नहीं लिया जा सकता है ।"

7. हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय का आदेश, विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अपीलार्थी ने उमा देवी द्वारा निष्पादित विल के आधार पर उसका विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया है । उसने अनुप्रमाणक साक्षी और विल के लेखक को प्रस्तुत किया है । साक्षियों ने अपीलार्थी जो उसकी बहन का पुत्र है, के पक्ष में उमा देवी द्वारा विल के निष्पादन का साक्ष्य दिया है । किसी अन्य व्यक्ति ने मृतक डिक्री धारक के विधिक प्रतिनिधि के रूप में डिक्री के निष्पादन की ईप्सा करने के लिए सामने नहीं आया है । यह उमा देवी ही है जिसने निष्पादन आवेदन फाइल किया था किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् अपीलार्थी ने ही निष्पादन को जारी रखने के लिए एक आवेदन फाइल किया है । मृतक डिक्री धारक के विधिक प्रतिनिधि का दावा करने वाले किन्हीं विरोधी दावेदारों के अभाव में, उच्च न्यायालय निष्पादन न्यायालय के आदेश को अपास्त करने में न्यायोचित नहीं था, जबकि संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के निबंधनों में, यह अवधारित करने की अधिकारिता है कि संक्षिप्ततः कौन विधिक उत्तराधिकारी है ।

8. हम यह कह सकते हैं कि संहिता, 1908 का आदेश XXII, वाद में लंबित कार्यवाहियों में लागू होता है । किन्तु, विधिक प्रतिनिधियों के विरोधी दावों को संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, निष्पादन कार्यवाहियों में विनिश्चित किया जा सकता है । इस न्यायालय ने **वी. उतिरापति** बनाम **अशरब और अन्य**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद में उद्भूत होने वाला साधारण सिद्धांत - डिक्री पारित होने के पूर्व - यह है कि विशिष्ट अवधि के भीतर प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाया जाना है - निष्पादन कार्यवाहियों में डिक्री धारक या निर्णीत ऋणी की मृत्यु के मामलों में

---

[1] (1998) 3 एस. सी. सी. 148.

लागू नहीं होता है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"11. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 का नियम 12 निम्नलिखित है :-

'आदेश 22 का नियम 12 - आदेश का कार्यवाहियों को लागू होना - नियम 3, नियम 4 और नियम 8 की कोई बात किसी डिक्री या आदेश के निष्पादन की कार्यवाहियों को लागू नहीं होगी ।'

12. दूसरे शब्दों में, वाद में उद्भूत होने वाला साधारण सिद्धांत - डिक्री पारित किए जाने के पूर्व - यह है कि विधिक प्रतिनिधियों को विशिष्ट अवधि के भीतर अभिलेख पर लाना होता है और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वाद का उपशमन हो सकता है - यह निष्पादन कार्यवाहियों में डिक्री धारक या निर्णीत ऋणी की मृत्यु के मामलों में लागू नहीं होता है ।

13. वेंकटचलम चेट्टी **बनाम** रामास्वामी सरवाई [आई. एल. आर. (1932) 55 मद्रास 352 = ए. आई. आर. 1932 मद्रास 73 (एफबी)] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह नियम अधिनियमित करता है कि उपशमन की शास्ति निष्पादन कार्यवाहियों में संबद्ध नहीं होगी । सिविल प्रक्रिया संहिता पर मुल्ला की कमेंट्री (खंड 3) पृष्ठ 2085 (पंद्रहवां संस्करण, 1997) में, उच्च न्यायालय के कई निर्णयों के प्रतिनिर्देश किया गया है और यह कहा गया है कि -

'नियम 12 एक ऐसा अपवाद निर्मित करता है जो यह उपबंध करता है कि जहां एक पक्षकार की निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान मृत्यु हो जाती है वहां उपशमन के उपबंध लागू नहीं होते हैं । इसलिए, नियम यह है कि डिक्री धारक के फायदे के लिए उसके उत्तराधिकारियों को नियम 2 के अधीन प्रतिस्थापित करने के लिए कोई कदम उठाने की आवश्यकता नहीं होती है, अपितु कार्यवाही करने के लिए यह

तत्काल रूप से लागू हो सकती है अथवा किसी भी समय पर जब कार्यवाही लंबित हो, या वे नया निष्पादन आवेदन फाइल कर सकते हैं ।'

14. हमारी राय में, सिविल प्रक्रिया संहिता पर मुल्ला की कमेंट्री में विधि का उपर्युक्त कथन, निष्पादन कार्यवाहियों में पक्षकारों द्वारा अंगीकार की जाने वाली कार्यवाही और सिविल न्यायालय की शक्तियों से संबंधित विधिक प्रास्थिति को सही तौर पर प्रस्तुत करता है ।"

9. विधिक प्रतिनिधियों को एकमात्र वाद के प्रयोजन के लिए भी पक्षकार बनाया जा सकता है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **दया राम और अन्य** बनाम **श्याम सुंदरी और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षकार बनाए गए विधिक प्रतिनिधि पर्याप्त तौर पर मृतक की संपदा का प्रतिनिधित्व करते हैं और अभिलेख पर उनके द्वारा प्राप्त विनिश्चय न केवल उन अभिवाचित पक्षकारों पर आबद्धकर होगा अपितु संपूर्ण संपदा पर आबद्धकर होगा जिन्हें अभिलेख पर नहीं लाया गया है । इस न्यायालय ने मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा **कादिर** बनाम **मुत्थुकृष्णा अय्यर**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय को अनुमोदित किया है ।

10. **मोहिन्दर कौर और एक अन्य** बनाम **पियारा सिंह और अन्य**[3] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने इस प्रश्न की परीक्षा की है कि क्या संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के अधीन विनिश्चय, उन्हीं पक्षकारों या उनके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच पश्चात्वर्ती वाद में 'पूर्व-न्याय' के रूप में कार्य करता है । न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"5. जहां तक उपर्युक्त उल्लिखित श्री बिन्द्रा के प्रथम तर्क का संबंध है, हमारा यह निष्कर्ष है कि लाहौर उच्च न्यायालय के

---

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1049.

[2] आई. एल. आर. 26 मद्रास 230.

[3] ए. आई. आर. 1981 पंजाब और हरियाणा 130.

निर्णय और इस न्यायालय द्वारा इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में निर्दिष्ट के अतिरिक्त, उन्हें अन्य उच्च न्यायालयों के कई निर्णयों का समर्थन प्राप्त है साथ ही जिनमें भिन्न कारणों को दोहराते हुए अभिनिर्धारित किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 5 के अधीन विनिश्चय, उन्हीं पक्षकारों या उनके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच पश्चात्वर्ती वाद में पूर्व-न्याय के रूप में प्रवर्तित नहीं होता है जिनमें कि मृतक के उत्तराधिकार या उत्तराधिकार पाने का प्रश्न पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में प्रत्यक्ष रूप से उद्भूत होता है । इन कारणों में से कुछ निम्नलिखित हैं –

(I) ऐसा विनिश्चय, स्वयं ही वाद में उद्भूत होने वाला विवाद नहीं होता है किन्तु यह वाद से सांपार्श्विक मामलों से संबंधित होता है और स्वयं वाद के पूर्व विनिश्चय में कार्यवाहियां कर सकता है । विनिश्चय, वाद में किसी विवाद के अवधारण को दर्शित नहीं करता है ।

(II) विधिक प्रतिनिधि मात्र वाद में संचालन के अनुक्रम के लिए नियुक्त किए जाते हैं । ऐसा विनिश्चय, सभी मामलों में मृतक के विधिक उत्तराधिकारियों के अधिकारों को किसी भी समय पर वंचित नहीं कर सकता है ।

(III) विनिश्चय – संक्षिप्त जांच का परिणाम होता है जिसके विरुद्ध अपील के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है ।

(IV) मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधित्व और उत्तराधिकार की अवधारणा संपूर्ण रूप से भिन्न है । एक विधिक प्रतिनिधि होने के अनुक्रम में, यह अनावश्यक है कि उसका संपदा में फायदाकारी हित होना चाहिए । निष्पादकगण और प्रशासकगण विधिक प्रतिनिधि होते हैं यद्यपि, वे फायदाकारी हित नहीं रख सकते हैं । मृतक की संपत्ति में अतिचारी द्वारा स्वयं स्वतंत्र रूप में मृतक की संपत्ति में हक

का दावा करने मात्र से वह विधिक प्रतिनिधि नहीं हो जाता है । दूसरी ओर, उत्तराधिकारी, जिनमें विधि के अधीन फायदाकारी हित न्यायगत होता है चाहे संविधि द्वारा या अन्य विधि द्वारा जिससे पक्षकार शासित होते हैं, विधिक प्रतिनिधि होंगे ।

* * * *

9. इसलिए, हमारी यह राय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 5 के अधीन विनिश्चय का सार मात्र उस उत्तर के प्रति निर्देशित करता है जो वाद के अंतिम विनिश्चय में विलंब से बचने को ध्यान में रखते हुए, साधारण तौर पर उन व्यक्तियों द्वारा आचरण किया जाता है जो विभिन्न वादों के माध्यम से सुस्थिर उत्तराधिकार के प्रश्न का उत्तर अपने पक्ष में पाने के लिए मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं और ऐसा विनिश्चय उस संबंध में मुकदमेबाजी का अंत नहीं कर सकता है । यह वाद में विरोधाभासी विवादों में से किसी भी विवाद का अवधारण भी नहीं करता है । इसके अतिरिक्त, यह सुस्पष्ट है कि यह कार्यवाही अत्यंत संक्षिप्त प्रकृति की होती है जिसके परिणामस्वरूप, मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि होने का दावा करने के समर्थन में कुछ संक्षिप्त साक्ष्य देने प्रस्तुत करने को मंजूर करने के लिए किसी अपील का उपबंध नहीं है, जिससे कार्यवाहियों की प्रकृति में किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता है । वर्तमान मामले में, आदेश की संक्षिप्तता (उपर्युक्त) जिसके साथ विचारण न्यायालय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को मामले की जांच करने के पश्चात् स्वीकार किया गया था, से यह तथ्य स्पष्टत: इंगित होता है कि प्रतिस्थापित कार्यवाहियां अति संक्षिप्त प्रकृति की समझी गई थी । इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, मृतक पक्षकार के उत्तराधिकार या उत्तराधिकार होने के प्रश्न को अवधारित करने को किसी प्रकार की अंतिमता प्रदान नहीं करने को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही करता है ।"

11. **मोहिन्दर कौर** (उपर्युक्त) वाले मामले में, दिए गए निर्णय को

इस न्यायालय द्वारा **दशरथ राव काते** बनाम **बृज मोहन श्रीवास्तव**[1] वाले मामले में, दिए गए निर्णय में निर्दिष्ट किया गया है और अनुमोदित किया गया है । उक्त मामले में उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के अधीन जांच संक्षिप्त प्रकृति की होती है, इसलिए, यह विधिक प्रतिनिधि के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए इसमें के अपीलार्थी के अधिकार को अवधारित करने तक ही सीमित था । इस न्यायालय ने उक्त मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

> "21. विधिक प्रास्थिति के रूप में, इसे विवादित नहीं किया जा सकता है कि साधारणतया, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 5 के अधीन जांच संक्षिप्त प्रकृति की होती है और इसमें निकाले गए निष्कर्ष, पूर्व-न्याय कोटि में नहीं आ सकता है, तथापि, उक्त विधिक प्रास्थिति, उन पक्षकारों के संबंध में ही सही हो सकता है, जो वसीयतदार के विरुद्ध पारस्परिक विरोधी दावे करते हैं । उदाहरण के लिए, यहां दो अन्य व्यक्ति थे, वे रमेश और अरुण काते थे, जो सुखियाबाई के विधिक प्रतिनिधियों के रूप में सिविल पुनरीक्षण कार्यवाही में सम्मिलित हुए थे । विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 9 सितम्बर, 1997 के आदेश में विल पर निष्कर्ष उनके विरुद्ध अंतिम नहीं हो सकता है अथवा उस मामले के लिए, कोई व्यक्ति जो इसमें के अपीलार्थी के साथ-साथ संपत्ति में विरोधी हक का दावा करता है और इसलिए, उस सीमा तक उच्च न्यायालय की मताभिव्यक्तियां सही हैं । तथापि, यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि जब विल के बारे में प्रश्न कि सविस्तार जांच की जाती है तो वहां न केवल अपीलार्थी का साक्ष्य अभिलिखित किया जाता है अपितु अनुप्रमाणक साक्षियों की भी परीक्षा की जाती है और जहां इन साक्षियों की व्यापक रूप से प्रतिपरीक्षा की जाती है और जहां प्रतिवादी स्वयं की परीक्षा की जाती है और यह साबित करने की कोशिश की जाती है कि विल के मिथ्या दस्तावेज है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह

---

[1] (2010) 1 एस. सी. सी. 277.

यह साबित करने में पूर्णरूपेण असफल है कि दस्तावेज मिथ्या है, विशिष्टतया, क्योंकि दस्तावेज को अपीलार्थी और उसके अनुप्रमाणक साक्षियों द्वारा पूर्णरूपेण साबित कर दिया गया है । इसलिए, साक्षियों से यह प्रत्याशा करना व्यर्थ होगा कि वे मुख्य वाद में पुन: साक्ष्य प्रस्तुत करे ।

* * * *

25. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल डा. कैलश चंद ने विजय लक्ष्मी जयराम **बनाम** एम. आर. परशुराम ए. आई. आर. 1995 ए. पी. 351 वाले मामले में, निर्णयज विधि का भी अवलंब लिया है । आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा यह सही ही अभिनिर्धारित किया गया है कि आदेश 22 का नियम 5 का उद्देश्य उन कार्यवाहियों का संचालन करने के लिए अभिलेख पर मात्र विधिक प्रतिनिधियों को लाने का प्रयोजन है जिनमें उन्हें अभिलेख पर लाया जाना है और यह पूर्व-न्याय के रूप प्रवर्तित नहीं होता है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस विधिक प्रास्थिति को सही तौर पर पुन: दोहराया है कि विरोधी विधिक प्रतिनिधियों के बीच आपस के विवाद का स्वतंत्र रूप से विचारण करना होता है और पृथक् कार्यवाहियों में विनिश्चय किया जाता है । यहां अपीलार्थी-वादी के विरुद्ध किसी विरोधी हक का दावा करते हुए, विधिक प्रतिनिधियों या किसी व्यक्ति के बीच कोई विरोधाभासी प्रश्न नहीं है । इसलिए, उसी वाद में, अपीलार्थी-वादी का पुन: सभी प्रकार से विल को साबित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है ।

26. मोहिन्दर कौर **बनाम** पियारा सिंह (उपर्युक्त) वाले मामले में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पूर्ण-न्यायपीठ की एक अन्य निर्णय का भी अवलंब लिया गया है । उसी मत को पुन: दोहराया गया है । जैसा कि हम पहले ही इंगित कर चुके हैं कि अभिव्यक्त मत में कोई गलती होने का कोई प्रश्न नहीं है । तथापि, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलार्थी-वादी द्वारा वाद नहीं करने का कोई प्रश्न नहीं उठता है, विशिष्टतया, क्योंकि उसी वाद में साक्ष्यों को पुन: दोहराने का कोई

प्रश्न नहीं है, विशिष्टतया, तब जब उसने यह प्राख्यान किया है कि वह विल (प्रदर्श पी-1) के आधार पर स्वामी हो गया है ।"

12. एक अन्य निर्णय **जलदि सुगुना (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **सत्य साईं केन्द्रीय न्यास और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संहिता, 1908 के आदेश XXII के नियम 5 के अधीन यह अवधारण करने के लिए कि कौन विधिक प्रतिनिधि है, मृतक की संपदा के प्रतिनिधित्व और उस मामले में न्यायनिर्णयन के लिए सीमित प्रयोजन होता है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"15. अभिलेख पर विधिक प्रतिनिधियों को लाने के लिए एक आवेदन फाइल करना, अभिलेख पर विधिक प्रतिनिधियों को लाने की कोटि में नहीं आता है । जब एलआर आवेदन फाइल किया जाता है तो न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए और यह विनिश्चय करना चाहिए कि क्या इसमें नामित्त व्यक्तियों को विधिक प्रतिनिधियों के रूप में मृतक की संपदा का प्रतिनिधित्व करने के लिए अभिलेख पर लाया जाना चाहिए । जब तक न्यायालय द्वारा ऐसा विनिश्चय नहीं कर दिया जाता है तब तक विधिक प्रतिनिधियों के रूप में होने का दावा करने वाले व्यक्तियों को मृतक की संपदा का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं होता है न ही वे मामले में, अभियोजन या प्रतिरक्षा कर सकते हैं । यदि यह विवाद होता है कि कौन विधिक प्रतिनिधि है तो ऐसे विवाद पर विनिश्चय किया जाना चाहिए । मात्र तब जब विधिक प्रतिनिधि का प्रश्न न्यायालय द्वारा अवधारित किया जाता है और ऐसा विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर लाया जाता है तो यह कहा जा सकता है कि वह मृतक की संपदा का प्रतिनिधित्व करता है । यह अवधारण कि आदेश 22 के नियम 5 के अधीन कौन विधिक प्रतिनिधि है, निस्संदेह, मृतक की संपदा का प्रतिनिधित्व करने और उस मामले का न्यायनिर्णयन करने के सीमित प्रयोजन के लिए

---

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 521.

होता है । ऐसे सीमित प्रयोजन के लिए ऐसा अवधारण उस व्यक्ति को विधिक प्रतिनिधि अभिनिर्धारित होने के नाते उस संपत्ति में कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करता है जो वाद के साथ ही साथ मृतक की संपदा में अन्य विरोधी दावेदारों की विषय-वस्तु है ।

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

13. एक अन्य निर्णय **सुरेश कुमार बंसल** बनाम **कृष्णा बंसल और एक अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"20. अब यह सुस्थिर है कि इस प्रश्न का अवधारण कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 5 के अधीन मृतक वादी या प्रतिवादी का कौन विधिक प्रतिनिधि है, मात्र उन विधिक कार्यवाहियों को संचालित करने के लिए अभिलेख पर विधिक प्रतिनिधियों को लाने के प्रयोजन मात्र के लिए ही होता है और यह पूर्व-न्याय के रूप में प्रवर्तित नहीं होता है और प्रोबेट कार्यवाहियों में विरोधी विधिक प्रतिनिधियों के बीच आपसी विवाद का स्वतंत्र रूप से विचारण और विनिश्चय होना चाहिए । यदि, इसे बेदखली वाद या अन्य समवर्ती वादों के विनिश्चय के लिए मंजूर किया जाता है तो वादों में विलंब होगा जिससे मात्र किराएदारों को ही फायदा होगा ।"

14. पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी, विल के आधार पर मृतक की संपदा में एकमात्र दावेदार है । निष्पादन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी मृतक का विधिक प्रतिनिधि है जो डिक्री का निष्पादन कराने में सक्षम है । उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी विधिक प्रतिनिधि के रूप में, डिक्री का निष्पादन कराने और इसका तार्किक रूप से अंत कराने का हकदार है ।

15. डिक्री का निष्पादन कराने में विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 162.

बनाने की कार्यवाहियों की प्रकृति के अतिरिक्त हमारा यह निष्कर्ष है कि संहिता, 1908 की धारा 115 में अधिकथित परीक्षणों में से किसी भी परीक्षण का उच्च न्यायालय द्वारा समाधान नहीं किया जा सका था जिससे कि निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जा सके । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप किया है यद्यपि, जैसे कि उसने प्रथम न्यायालय के रूप में कार्य किया है । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश में तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है जब वह अपनी ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए करता है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं होता है या इस प्रकार निहित अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहता है या अवैध तौर पर अधिकारिता का प्रयोग करता है या तात्विक अनियमितता बरती गई हो । मात्र यह तथ्य कि उच्च न्यायालय का उन्हीं तथ्यों पर विभिन्न मत था, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की किसी अधिकारिता को प्रदत्त नहीं करता है । परिणामतः, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है और निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को प्रतिस्थापित किया जाता है । यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.